स वै पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुसां विष्वक्सेन कथासु यः ।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीतिसे पालन करते जीव निरन्तर ।
भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १७ | गौराब्द ४८५, मास—पद्मनाभ १२, वार—गर्भोदशायी शुक्रवार, ३१ भाद्र, सम्वत् २०२८, १७ सितम्बर १९७१ | संख्या ४

सितम्बर १९७१

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

श्रीमुचकुन्दकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।५१।४५-५७)

श्रीमुचकुन्द उवाच—

विमोहितोऽयं जन ईश मायया त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक् ।
सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित् पुरुषश्च वञ्चितः ॥४५॥

श्रीमुचकुन्दने कहा—हे ईश ! स्त्री एवं पुरुष—ये दोनों ही जातिके व्यक्ति आपकी मायासे मोहित हैं, इसलिए अनर्थ दृष्टियुक्त होकर आपकी सेवा नहीं करते, परन्तु परस्पर वंचित होकर सुखेच्छासे दुःखजनक गृहमें ही आसक्त रहते हैं ॥४५॥

लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं कथञ्चिदव्यङ्गमयत्नतोऽनघ ।
पादारविन्दं न भजत्यसन्मतिर्गृहान्धकूपे पतितो यथा पशुः ॥४६॥

हे अनघ ! मनुष्य इस कर्मभूमिमें आकर भाग्यक्रमसे बिना यत्नके दुर्लभ एवं अविकलाङ्ग मनुष्यदेह प्राप्त करके भी आपके पादपद्मयुगलकी सेवा नहीं करता, परन्तु पशुकी तरह विषय सुख भोग करनेकी तीव्र वासनासे प्रेरित होकर गृहरूप अन्धेरे कुँएमें गिर पड़ता है ॥४६॥

ममैष कालोऽजित निष्फलो गतो राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः ।
मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभूष्वासज्जमानस्य दुरन्तचिन्तया ॥४७॥

हे अजित ! मैंने भी देहात्मबुद्धि विशिष्ट होकर, पुत्र, स्त्री, कोष और राजत्वके प्रति आसक्तिसम्पन्न एवं राजसम्पदसे अभिमत्त होकर दुरन्त चिन्ताकी अधीनतामें इतना समय निष्फल रूपसे व्यर्थ ही अतिवाहित किया है ॥४७॥

कलेवरेऽस्मिन् घटकुड्यसन्निभे निरूढमानो नरदेव इत्यहम् ।
वृतो रथेभाश्वपदात्यनीकपैर्गां पर्यटंस्त्वागणयन् सुदुर्मदः ॥४८॥

इतने दिनों तक घड़े और भीतके तुल्य इस अनात्मपदार्थ नश्वर शरीरमें 'मैं मानवों-का अधिपति हूँ'—इस प्रकारके अभिमानसे युक्त होकर रथ, हस्ती, घोड़े, पदसैनिक एवं सेनानियोंसे परिवृत होकर पृथिवी पर्यटन करता रहा । आपकी चिन्ता न कर अतिशय मदमत्त हो गया था ॥४८॥

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ।
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥४९॥

हे भगवान् ! जो लोग निरन्तर "इस कार्यके पश्चात् अमुक कार्यका अनुष्ठान करेंगे"—इस प्रकारके मनोरथ समूहद्वारा प्रेरित होकर नितान्त असावधान रहते हैं तथा विषयलालसा पूर्त्ति एवं विषयप्राप्त होनेपर भी फिरसे उनके प्रति अत्यधिक लोभग्रस्त होते हैं, नित्य जाग्रत कालरूपसे आप क्षुधातुर सर्पका सहसा चूहेके ऊपर आक्रमणकर उसे निगलनेकी तरह सहसा आक्रमण कर उन्हें अपना ग्रास बना लेते हैं ॥४९॥

पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन् मतङ्गजैर्वा नरदेवसंज्ञितः ।
स एव कालेन दुरत्ययेन ते कलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः ॥५०॥

पहले जो शरीर सुवर्णमण्डित रथ या गजसमूहमें भ्रमण करते समय 'राजा' के नामसे पुकारा जाता है, वही शरीर आपकी दुरतिक्रमणशील कालगतिसे विष्टा, कृमि या भस्मके रूपमें परिणत हो जाता है ॥५०॥

निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो वरासनस्थः समराजवन्दितः ।
गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां क्रीड़ामृगः पूरुष ईश नीयते ॥५१॥

हे भगवन् ! जो चक्रवर्त्ती सम्राट् लोग निखिल दिशाओंको विजय करनेके पश्चात् संग्रामशून्य अवस्थामें उत्तम सिंहासनपर अवस्थित होकर आत्मसदृश राजाओंद्वारा सम्मानित होते हैं,ऐसे पुरुष भी मैथुनसुखयुक्त गृहमें कामिनियोंके क्रीड़ामृगकी तरह यहाँ वहाँ परिचालित होते रहते हैं ॥५१॥

करोति कर्माणि तपस्सुनिष्ठितो निवृत्तभोगस्तदपेक्षया ददत् ।
पुनश्च भूयेयमहं स्वराडिति प्रवृद्धतर्षो न सुखाय कल्पते ॥५२॥

जो लोग अतिशय विषय भोग-लालसाग्रस्त हैं, ऐसे व्यक्ति लोग "मैं जन्मान्तरमें इन्द्रत्व प्राप्त करूँगा"—इस प्रकारके संकल्पके वशवर्त्ती होकर ऐहिक भोगोंका परित्याग कर तपस्यामें आसक्त होनेके कारण वे भी सुखानुभव करनेका अवसर नहीं प्राप्त करते ॥५२॥

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव तद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते मतिः ॥५३॥

हे अच्युत ! इस प्रकार संसार भ्रमणशील व्यक्तियोंकी जब बन्धनदशा समाप्त होती होती है, उस समय ही सत्संगम होता है एवं जब सत्समागम होता है, तब ही साधुओंके परम गतिस्वरूप निखिल कार्य-कारणके नियन्ता आपके प्रति भक्ति उदित होती है एवं संसारसे मुक्ति होती है ॥५३

मन्ये ममानुग्रह ईश ते कृतो राज्यानुबन्धापगमो यदृच्छया ।
यः प्रार्थ्यते साधुभिरेकचर्यया वनं विविक्षद्भिरखण्डभूमिपैः ॥५४॥

हे भगवन् ! तपस्याके लिए वनगमनाभिलाषी विवेकी राज-चक्रवर्त्ती लोग ऐकान्तिक निष्ठाके साथ भवदीय ध्यान-भक्तिकी सिद्धिके लिए जो राज्यादिसे संगविच्छेदकी प्रार्थना करते हैं, मेरे लिए उक्त राज्यादिसंग जो अनायास ही विच्छिन्न हो गये हैं, उसे मैं आपका अनुग्रह ही समझता हूँ ॥५४॥

न कामयेऽन्यं तव पादसेवनादकिञ्चनप्रार्थ्यतमाद् वरं विभो ।
आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे वृणीत आर्यो वरमात्मबन्धनम् ॥५५॥

हे विभो ! मैं अकिंचन व्यक्तियोंके सर्वोत्तम प्रार्थनीय आपके पादपद्मोंकी सेवाको छोड़कर दूसरा कोई वर प्रार्थना नहीं करता। क्योंकि कौनसा विवेकी पुरुष मुक्तिप्रदाता आपकी आराधना कर अपने बन्धनके कारणरूप काम्य वर प्रार्थना करेगा ? ॥५५॥

तस्माद् विसृज्याशिष ईश सर्वतो रजस्तमःसत्त्वगुणानुबन्धनाः ।
निरञ्जनं निर्गुणमद्वयं परं त्वां ज्ञप्तिमात्रं पुरुषं व्रजाम्यहम् ॥५६॥

हे भगवन् ! अतएव मैं सर्व प्रकारसे सत्त्व, रज एवं तमोगुणके सम्बन्धयुक्त काम्य विषयोंका परित्याग कर अद्वय, निर्गुण (अप्राकृत गुणयुक्त), निरुपाधिक, सच्चिदानन्दविग्रह, अक्षर, परमपुरुष आपके शरणागत हो रहा हूँ ॥५६॥

चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापैः रवितृषऽडमित्रोऽलब्धशान्तिः कथञ्चित् ।
शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्मन्नभयमृतमशोकं पाहि माऽपन्नमीश ॥५७॥

हे शरणप्रद ! हे परमात्मन् ! हे ईश ! मैं इस लोकमें दीर्घकालसे कर्मफल द्वारा पीड़ित हूँ, अनुतापसे सन्तापित हूँ एवं तृष्णार्त्त इन्द्रिय-शत्रुओंकी ताड़नासे शान्तिशून्य होकर दैववशतः सत्य, अभय, अशोक आपके पादपद्मोंमें शरणागत हुआ हूँ; मुझ संकटग्रस्त व्यक्तिकी आप रक्षा करें ॥५७॥

॥ इति श्रीमुचकुन्दकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम् सम्पूर्णम् ॥
॥ इति श्रीमुचकुन्दकृत श्रीकृष्णस्तोत्र सम्पूर्ण ॥

शुद्धि-पत्र

गतांकमें निम्नलिखित अशुद्धियाँ रह गयी हैं, अतः पाठक वर्ग उन्हें संशोधन कर पाठ करें—

पृष्ठ सं०	कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५०		३	एवं	एवं देवताओंके
५१	२	२८	गलबली	खलबली
५४	२	१५	पूण	पूर्ण
५५	२	२७	वि	विष्णुं
५५	२	३०	प्रेमहृष्टतनवौ	प्रेमहृष्टतनवो
५७	१	५	अकिञ्चितकर	अकिञ्चित्कर
५९	१	९	काय	कार्य
५९	१	२१	भक्तचानुकल्य	भक्तचानुकूल्य
६४	२	२३	अपना	अपनी
६५	१	१३	पर्यन्त तक	पर्यन्त
६६		१९	तीर्थं	पुरी
६९	२	२३	बत	बहुत

आधुनिक वाद

किसी एक साम्प्रदायिक सामयिक पत्रिकाका पाठ करके यह विषय ज्ञात हुआ कि संकीर्ण साम्प्रदायिक विचारपथमें भ्रमण करनेवाले एक जनैक पथिक अपने संकीर्ण-ज्ञानके कारण आत्मज्ञान शून्य होकर उपादेय ज्ञान ग्रहण करनेके पूर्व ही श्रीधर्मके सम्बन्धमें नवीन व्यवस्था करनेके लिए उन्मुख हुए हैं। दुःखकी बात यही है कि उक्त लेखक द्वारा समस्त दर्शन-शास्त्र और वेदान्तकी आलोचना एवं आचार्यके अनुगमन-धर्मको एकत्र कर ज्ञानालोचना करने पर भी उनके परिपुष्ट धर्मभावमें स्वार्थपरता ही प्रकाश पा रही है। इस प्रकारकी उच्च ज्ञानालोचना द्वारा स्वार्थपरतारूप धर्मको पुष्ट न करना ही उनके लिए उचित है। लेखकद्वारा प्रदर्शित कुकर्मकारी व्यक्ति उनकी तरह धर्म ग्रहण करनेमें अक्षम हैं। क्योंकि अनन्त-ज्ञानसिन्धु पतितपावन श्रीश्रीगौरचन्द्रने ही उन्हें स्वार्थपरता शिक्षा देनेके बदलेमें "तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः"—यह आज्ञा प्रदान की है। 'सज्जनतोषणी' के पवित्र कलेवरको इस प्रकारकी प्रलपित और कलुषित बातकी अवतारणा द्वारा आप्लावित करना अनुचित होने पर भी श्रीवैष्णवोंके हृदयमें अकारण क्लेश देकर भ्रान्त आधुनिकवादी व्यक्ति शुद्धभक्ति-पथको कन्टकपूर्ण न कर दें, इसलिए थोड़ी सी आलोचनाकी नितान्त आवश्यकता है। लेखककी कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं—"ज्ञानालोचनाके बिना धर्मभाव कदापि पुष्टि प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता एवं अपनेको कुसंस्कार-रूपी आवर्जनासे रक्षा करनेमें असमर्थ है। प्रेमकी प्रबल बाढ़में जब शान्तिपुर एवं नवद्वीप डूब गये थे, तब धर्मक्षेत्रमें ज्ञानकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होनेपर भी उस क्षेत्रमें जो लोग नेता थे, वे लोग आज यदि लौटकर आकर यह देख पाते कि ज्ञानके अभावमें उनका वह प्रेम दुर्गतिकी किस चरम सीमाको प्राप्त हुआ है, तो वे लोग उस समय स्वयं ही यह कहते कि ज्ञानकी उपेक्षा करके कितना बड़ा कुकर्म हो गया है।"

उक्त लेखक ज्ञानमार्गके व्यक्ति हैं। उन्हें ज्ञानकी बात छोड़कर और दूसरी बातें अच्छी नहीं लगतीं। विशुद्ध प्रेमको भी ज्ञानरूपी कङ्कड़से मिश्रित नहीं करनेसे उन्हें तृप्ति नहीं होती। रुचि क्या ऐसी वस्तु है कि परम-ज्ञान प्राप्य प्रीतिकी भी शुष्क ज्ञानके साथ समानता करनेके लिए प्रयासशील है! जो भी हो, इस स्थलमें लेखकको ज्ञान और भक्तिका सम्बन्ध कुछ बतला देना उचित है। शक्तिमान् और शक्ति-सम्बन्ध-ज्ञान ही 'पर ज्ञान' है एवं इसको छोड़कर अन्यान्य ज्ञान 'अपर ज्ञान' नामसे कथित हैं। दूसरे शब्दोंमें भगवत्तत्व एवं जीवतत्वके बारेमें यथार्थ रूपसे जानना ही ज्ञान है। ज्ञातृत्वके बिना ज्ञानकी और कोई क्रिया नहीं है। यहीं ज्ञानकी अन्तिम सीमा है। ज्ञानवादी और अधिक दूर जानेके अधिकारी नहीं हैं। जिनकी अनन्त शक्तियोंमें से एकमात्र बहिरङ्गा

शक्तिका आश्रय लेकर ज्ञानवादी लोग अहंकार-शैलके परमोच्च शिखरमें आरोहण कर रहे हैं, उन अनन्त शक्तिमान् सम्बित्-विग्रह स्वयं भगवानकी शक्तिका एक कण प्राप्त करनेमात्रसे ही प्राप्त-ज्ञान एवं प्राप्त-स्वरूप होकर जीव ब्रह्मज्ञानको खद्योत-किरण तुल्य जानकर प्रेम-कणा प्राप्त करनेके लिए उन्मत्त हो पड़ते हैं । ऐसी अवस्थामें भी यदि ज्ञानवादी परब्रह्मके साथ अपनेको समान समझकर ज्ञानकी सहायता लेनेका परामर्श दें, तो उसे उनका दुर्भाग्य ही जानना होगा । ज्ञानवादी लोग सम्बन्ध ज्ञानमें ही आबद्ध हैं । प्रयोजन-सिद्धि उनका उद्देश्य नहीं है ।

ज्ञानकी सुदृढ़ शृङ्खलासे मुक्त होना ही श्रीधर्मकी प्रवेशिका परीक्षा है । मनुष्य लोग जब तक कर्मरूपी गर्त्तमें पड़े रहते हैं, तब तक उनकी भोगवासना प्रबल रहती है । जब वे लोग कर्म-चक्रमें भ्रमण करते करते थक जाते हैं, तब वे कर्मसे छुटकारा पानेको ही सबसे उत्तम कार्य समझते हैं । वे जिस उपादान द्वारा गठित हैं, उससे उनका ज्ञानानुशीलन ही बढ़ता है । कर्मके आवरणसे मुक्त होने पर ज्ञानमय जीव ज्ञानके चक्रमें पड़ते हैं । ज्ञानानुशीलनके बिना दुर्गम कर्मचक्रसे मुक्ति नहीं होती । ज्ञानका चरम फल कर्मका विनाश है । कर्म-राहित्य ज्ञानका गौण-लभ्य विषय है । ज्ञानानुशीलन चरममें सम्बन्ध-ज्ञानके साथ परिचय कराकर निरस्त होता है । इसके ऊपर ज्ञानकी चलत्-शक्तिकी गति नहीं है । ज्ञान कुछ ठोस प्राप्य वस्तु नहीं है । इसकी सहायतासे अभीष्ट प्राप्त होता है । ज्ञान केवल उपायमात्र है, उपेय नहीं है । ज्ञान प्राप्त होनेसे ही अभीष्ट सिद्ध हो गया है, ऐसा कहा नहीं जा सकता । तब केवल अभीष्ट सिद्धिका पथमात्र निर्दिष्ट होता है । जीवका स्वरूप ज्ञानमय है इसलिए ज्ञान एक मुख्य पदार्थ है । किन्तु ज्ञान मुख्य पदार्थ होने पर भी उद्दिष्ट प्राप्य पदार्थ नहीं है । प्राप्य उद्देश ज्ञान नहीं, परन्तु दूसरी वस्तु है । यही प्रेम या भक्ति है । भक्ति या प्रेम उपाय होकर भी उपेय भी है । उपाय-ज्ञानकी सहायतासे उपेय-वस्तु प्राप्त होने पर ज्ञानी जीव कदापि और ज्ञानकी आलोचना नहीं करेंगे । उन्हें ज्ञानालोचनाकी आवश्यकता नहीं रहती । लक्ष मुद्राएँ हैं, ऐसा कहनेसे एक पैसा, दो पैसे, चार पैसे हैं—कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । तब ज्ञानावादीकी सम्पत्ति केवल एक पैसा है । उन्होंने उससे अधिक गिनना नहीं सीखा है । इसलिए लक्षपतिकी सम्पत्ति का परिमाण न जानकर वे अज्ञानी, अबोध शिशुकी तरह बीच बीचमें कुवाक्य बोल देते हैं । ज्ञानानुशीलन परिपक्व होने पर अभिज्ञता प्राप्त होती है । ज्ञानीकी पूर्ण अभिज्ञता-प्राप्ति ही दूसरे शब्दोंमें प्रेमानुशीलन है ।

शिशु ज्ञानवादी लोग अपने ज्ञान-काँचको ही अधिक मूल्यवान् समझकर प्रेम चिन्ता-मणिको भी उससे समज्ञान करनेमें संकोच नहीं करते । अभिज्ञ भक्त लोगोंने यह जान लिया है कि क्षुधावश-योग्य मनुष्यका क्षुधा-निवारण सुखाद्य भोजन द्वारा ही करना चाहिए । इस भूख-निवृत्ति कार्यमें यदि अनधिकारी ज्ञानवादी आकर कहे कि भूख क्या है, केवल उसकी आलोचना मात्र करनी चाहिए, आस्वादन न कर केवल आलोचना करनेसे ही कार्य सम्पन्न हो जायगा, तो यह ज्ञानके नामपर अज्ञानताको छोड़कर और क्या हो सकता है ? जब तक आलोचना भजन-प्रवृत्तिसे कम न हो जाय, तब तक ही

ब्रह्म-ज्ञान एवं सम्बन्ध-ज्ञान आदि बातोंमें समय अतिवाहित करना अच्छा लगता है। ज्ञानानुशीलन या आलोचना ही यदि केवल धर्म हो, एवं आलोचना द्वारा ही यदि उनका अभीष्ट सिद्ध हो, तो ज्ञानवादी और भक्तका उद्देश्य परस्पर सम्पूर्ण स्वतन्त्र है। शिल्पकार या गृह-निर्माणकर्त्ताका उद्देश्य प्रासाद-प्रस्तुतकरण है एवं राजा लोगोंका उद्देश्य उसमें निवास करना है। मोदकका उद्देश्य मिठाईयाँ बनाना है, भूखे व्यक्तिका उद्देश्य उसका आस्वादन या भोजन है। ज्ञानवादी और भक्तका उद्देश्य यदि भिन्न भिन्न हो, तो ज्ञान-सेवककी भक्तके साथ समानता करनेका प्रयास परित्याग कर दे, यही मेरा अनुरोध है।

भक्त बुभुक्षु (अर्थात् कृष्णेन्द्रिय-तर्पण के आस्वादक) हैं; वे जिस किसी प्रकारसे क्यों न हों, उनके अभीष्ट-खाद्यके सम्बन्धमें प्रयोजनानुसार ज्ञान-संग्रह अवश्य कर चुके हैं। वे भोजनकालमें हरिदास मोदक या रामदास मोदकके पूर्व-पुरुषके जातिके मनुष्य सुन्दर थे या श्रीगौरांगदेवकी कृपासे उन्होंने मोदकत्व प्राप्त किया है, इस प्रकारके व्यर्थ-वाक्यव्ययको भोजनके अंगके रूपमें स्वीकार नहीं करते। भोजनके पूर्व उन्होंने यह आश्वासन पाया है कि उनके पूर्व महाजनोंने यह खाद्य प्राप्त कर उनकी अभीष्ट वस्तु प्रीति प्राप्त की है। उन लोगोंने मायावाद-विष भक्षण कर आत्मविनाश नहीं किया है। केवल-ब्रह्मज्ञान, निर्विशेष-ज्ञान, कपिलका प्रकृति-ज्ञान आदि शिशु-प्रमोदकारी विषमय लड्डू आदि उनके ग्रहणीय विषय नहीं हैं। आत्मज्ञान, आत्मानुभूति, शक्तिमत्तत्व, शक्ति का सम्बन्ध-ज्ञान आदि प्रेमिकके आस्वादनीय पदार्थकी चमत्कारिताको प्रकट करते हैं। अमृतमय एवं विषमय खाद्यके भेद-विचारसे उनमें विलक्षण अभिज्ञता है। कितना खोआ और कितना मीठा द्रव्य उसमें लगा है एवं किस प्रकार, किनकेद्वारा, किस प्रक्रियासे खाद्य द्रव्य तैयार किया है, यह ज्ञान भी उनमें नहीं है। इस प्रकार बातें बनाकर अपनी अनभिज्ञता प्रकाश करना अबोध ज्ञानवादी लोगोंके लिए शोभा पाता है। श्रीगौड़ीय सम्प्रदायमें ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जो ज्ञानवादी के विषमय लड्डूकी आमूल-प्रस्तुत-करण-प्रणालीके द्वारा एवं उसके आस्वादनसे आत्मविनाश होता है, इस विषयमें उपदेश करनेमें समर्थ हैं। किन्तु वे लोग अहंकारमें मत्त होकर ज्ञानवादीकी अपेक्षा अधिक ज्ञान-द्वारा ज्ञानी हैं, यह कहकर आत्मप्रशंसा या स्वार्थपरता प्रकाश नहीं करते। ज्ञानवादियों के उपकारके लिए आचार्यवर श्रील रूप गोस्वामीपादने उनके रचित श्रीभक्तिरसामृत-सिन्धु ग्रन्थमें भक्तिके विषयमें जो बातें बतलाई हैं, उन्हें नतमस्तक होकर ग्रहण करना ही ज्ञानीके लिए मंगलजनक है। क्षुद्दहन या केवल दुःख-निवृत्ति ही ज्ञानियोंकी ज्ञान-चेष्टा है; वही यदि अग्राह्य हो, तो धर्म और क्या हुआ ?

भुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्त्तते ।
तावद् भक्तिसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत् ॥
(भ० र० सि० १।२।१५)

भुक्ति-स्पृहा और मुक्ति-स्पृहा—ये दो पिशाचियाँ हैं। जब तक ये दोनों किसी

व्यक्तिके हृदयमें हों, तब तक उसके हृदयमें भक्ति-सुखका अभ्युदय नहीं हो सकता।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥
(भ० र० सि० १।१।९)

अनुकूल भावसे कृष्ण-विषयका अनुशीलन ही उत्तमा भक्ति है। ऐसी भक्तिमें कृष्णसेवाको छोड़कर और दूसरा कोई अभिलाष नहीं है। वह नित्य-नैमित्तिकादि कर्म, निर्भेद-ब्रह्मानुसन्धानपर ज्ञान और योग आदिके आवरणसे रहित है।

भक्तिको जिन्होंने उपादेय विषयके रूपमें ग्रहण कर लिया है, वे ही परम-ज्ञानके अभीष्ट-फल प्राप्त किये हैं। ज्ञानमय जीवका उद्देश्य जिस कोई उपायद्वारा उपेय भक्ति प्राप्त करना ही है। एकबार उपेय निर्दिष्ट होनेपर फिरसे उपेय निर्देश करने जाकर विकृत मस्तिष्कयुक्त व्यक्तिकी तरह पुनः ज्ञानमलका लेपन करना अनुचित है। यदि तब भी ज्ञानकी सहायता आवश्यक हुई, तब भक्तिका उदय नहीं हुआ, यही जानना चाहिए। ब्रह्मज्ञान सम्यक् प्रकारसे प्राप्त होने पर जिस भावकी प्राप्ति होती है, वह इतना क्षुद्र है कि उसे भक्ति या प्रेम-कणा कहना उसकी अति प्रशंसा-मात्र है। श्रील रूप गोस्वामीपादने अपने ग्रन्थमें लिखा है—

ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत् परार्द्धगुणीकृतः ।
नैति भक्तिसुखाम्भोधेः परमाणुतुलामपि ॥
(भ० र० सि० १।१।२५)

यदि ब्रह्मानन्द सुखको द्विपरार्द्ध संख्याके द्वारा भी गुण किया जाय, उससे भी ब्रह्मानन्द सुख भक्ति-सुख-सागरके एक परमाणु तुल्य नहीं हो सकता।

ज्ञानका साधन कर, खाद्यद्रव्य पाक कर, मोची होकर पादुका प्रस्तुत करके भी यदि भक्तिकी उपादेयताका ज्ञान न हो, भोजन-सुखोद्देश्यकी सिद्धि न हो और पादुकाका व्यवहार न हो, तो यह ज्ञान साधन कर, खाद्य पाक कर एवं चर्मकार-वृत्ति अवलम्बन कर समस्तको ही वृथा परिश्रममें परिणत करना ही ज्ञानवादीका उद्देश्य कहना होगा। चर्मकार-वृत्तिकी आमूल-वार्त्ताकी आलोचना करनेसे ही क्या पादुकाधारीका अभीष्ट प्राप्त होगा—या पादुका धारण करनेपर अभीष्ट प्राप्त होगा ? भक्तोंके लिए ज्ञानालोचनाकी क्या आवश्यकता है ? इस प्रकारके बाल्य-चापल्यके दिनमें ही अर्थात् भक्त होनेके पूर्व ही तो उन्होंने अपने पाण्डित्यका विकाश कर उसकी अकर्मण्यता समझकर ही उसका त्याग कर दिया है। तब क्यों उनसे बच्छड़ोंके दलमें प्रवेश करनेके लिए अनुरोध कर रहे हो ?

ज्ञानवादी ही संस्कार-कुसंस्कार आदि अवस्थाके दास हैं। लब्धज्ञान होनेपर सुसंस्कार या कुसंस्कारके हाथसे निष्कृति प्राप्त नेका विचार उत्पन्न होता है, तब फिरसे ज्ञानानुशीलनकी आवश्यकता नहीं होती। ज्ञानवादी लोग अपने-अपने सम्प्रदायोंके सदस्योंके मनोगत भावोंकी तालिका संग्रह करनेसे वे ही परस्पर एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिको 'कुसंस्कारमें आबद्ध' कहनेका प्रयास करेंगे। हाक्सलि, चार्वाक, डारविन आदिकी तरह ज्ञानवादी आधुनिक वैदान्तिक ज्ञानवादी को कुसंस्कारापन्न एवं हेय समझेंगे एवं नाना प्रकारकी आवर्जना रूप रूपमें बद्ध मानते हैं।

हे संकीर्ण-साम्प्रदायिक-उन्नतिशील ज्ञानवादिन् ! तुम्हारी आवर्जनाओंको ज्ञानातीत भक्तके पवित्र कलेवर पर फेंकनेका प्रयास क्यों करते हो, जान नहीं पाता । तुम्हारी आवर्जनाओंके दुर्गन्धसे सभी दिशाओंको कलुषित करनेका प्रयास ही तुम्हारे अज्ञान-अनुशीलनका परिचय देता है। क्योंकि तुम्हें ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ । यदि तुम्हारे ज्ञानानुशीलनसे कोई वास्तविक उपकार हुआ हो, तो तुमने जो सिद्धान्त निरूपण किया है, तुम्हारे उसी विचारानुसार तुम भी किसी एक कुसंस्कारकी आवर्जनामें गिर गये हो। तुम्हारी आवर्जनाको दूर करनेका और उपाय नहीं है। तुम्हारे द्विहृदय-वाक्य (दो तरहके विपरीत भावापन्न वाक्य) में अश्रद्धा पैदा करा रहे हो । सिद्धान्त हो जाने पर ज्ञानानुशीलनकी आवश्यकता नहीं होती । काल-ज्ञानके लिए घड़ी देखकर यदि यह जान पाये कि मध्यरात हुआ है, तो इस ज्ञात-विषयको फिरसे जाननेका प्रयास क्या विकृत-चित्तका परिचय नहीं देता ?

ज्ञानका प्राप्य, उसकी अपेक्षा उत्कृष्ट और प्रयोजनीय विषयरूपसे यदि भक्ति या प्रेम स्वीकृत हो, तो फिरसे उसे किस लिए मलयुक्त करनेका प्रयास करते हो ? नाटक-दलके 'वैष्णव' वेशमें सज्जित नायकको ही 'वैष्णव' कहना कितना ज्ञानका कार्य है, यह ज्ञानवादी ही कह सकते हैं । नाटक-दलके ज्ञानवादी या ब्रह्मवादी सजकर इस नामसे परिचित होने पर नाटककारियोंके दूसरे समय के व्यवहार या नाटकमें ज्ञानवादीके आचरण-विरुद्ध व्यवहार देखकर ज्ञानवादकी निन्दा करनेमें प्रवृत्त होना भी किस प्रकारकी प्रवृत्ति का परिचय है, समझमें नहीं आता । ज्ञानवादी सजकर अज्ञानवादको ज्ञान कहकर परिचय देने मात्रसे ही अन्ध विश्वासके अधीन होकर उस व्यक्तिको प्राप्त-ज्ञान ऋषि कहकर उसका मत ग्रहण करना होगा, ऐसा तो यथार्थ ज्ञानवादी स्वीकार न करेंगे । दुर्नीति-परायण, स्वार्थपरतायुक्त, नीच चित्तवाले व्यक्ति लोग परम-पवित्र धर्मकी आड़में बगुलेकी तरह आश्रय ग्रहण किये हुए हैं; इसलिए उन्हें धार्मिकाग्रगण्य और प्राप्तज्ञान-महापुरुष भक्त कहकर ग्रहण करना होगा, ऐसा, तो नहीं होता । ज्ञानवादकी अधीनतामें भी इस प्रकारके नीच भावापन्न व्यक्ति लोगोंने आश्रय ग्रहण नहीं किया है या नहीं करेंगे, ऐसा आश्वासन कौन दे सकता है ? इस श्रेणीके व्यक्तियोंके कारण महाजन लोग अदूर-दर्शी ज्ञानप्रिय व्यक्तियोंके निकट उपहासके पात्र होनेकी योग्यता प्राप्त नहीं कर सकते । प्रेम-धर्ममें ज्ञानरूप मल प्रवेश करनेके कारण ही नाना प्रकारके उपधर्मोंकी सृष्टि हुई है। भक्ति-देवीको आहत कर, अपने संकीर्ण ज्ञानका भक्तिमें प्रवेश कराकर कपट भक्त बनते हुए भक्तिमें भी मायावाद-विष आरोपण करनेका प्रयास कई बार हो चुका है । इस नवीन ज्ञानवादीकी चेष्टा कोई नयी बात नहीं है । भक्तिको ज्ञानाधीन करने जाकर ही अपनी अपरिणाम-दर्शिताके प्रति ख्याल कम हुआ हैआ है । इसीलिए बाउल, कर्त्ताभजा आदि भक्ति-विरुद्ध सभी अपधर्म भी पवित्र-धर्मके अन्तर्गत हैं, ऐसा अर्वाचीन व्यक्तियोंके निकट जान पड़ता है। बाउल, कर्त्ताभजा आदि नाम त्याग कर भी आजकल कुछ इस प्रकारके ज्ञानी-भक्त सम्प्रदायके व्यक्ति मायावादके

मूलमें भक्ति प्रचार कर मूर्खोंको हिताहित ज्ञानसे वंचित कर रहे हैं । इस प्रकारके मतानुयायियोंका भी आजकल बहुत ही सम्मान देखा जाता है ।

नाटक-दलके वैष्णव या ज्ञानीके व्यक्तिगत चरित्रसे ही उस धर्मके आचार्य लोगोंपर अदूरदर्शिताका आरोप स्वार्थसिद्धिके लिए ही स्वार्थपर व्यक्तिके मुखमें शोभा पाता है। ज्ञानकंकड़ भक्ति-क्षीर-नवनीतमें नहीं है, इसलिए वह सड़ जायगा, इस भयसे केवल ज्ञानकंकड़ आस्वादन करना होगा—ऐसा नहीं हो सकता । विशुद्ध क्षीर या खीर प्रस्तुत कर उसीका सेवन करना चाहिए । ज्ञान कंकड़ मिलानेसे ही क्षीर या नवनीत निश्चय ही विकृत हो जायगा । नवीन प्रस्तावक के कुमतका समर्थन कर सनातन जैव-धर्मको परिवर्त्तन करनेका प्रयास करने पर बाउलिया, कर्त्तभिजा, नवगोरा, थियसफी, नवयुगीय ब्राह्म, तान्त्रिक, वैदिक-नामधारी सुविधावादी आदि मतोंकी सृष्टि होगी । भक्ति जगतसे लुब्ध हो जायगी । ज्ञानवादी लोग भक्त पोषाकके आड़में भक्तके निकट मनोगत भावको गुप्त रखनेकी जितनी ही चेष्टा क्यों न करें, उनके हृदयमें मायावाद बीज भक्तिके मूलपर अवश्य ही कुठाराघात करेगा । इस लिए कलिपावन अकृत्रिम दयासमुद्र श्रीश्री-गौरचन्द्रने मायावादी संग-त्यागको ही भक्ति वृद्धिका एकमात्र उपाय कहकर निर्णय किया है । इस ज्ञान-दलमें मायावाद कहीं सुप्त अवस्थामें और कहीं मूर्त्तिमान हलाहल विष रूपसे विराजमान है । अभक्त मायावादी लोग विभिन्न स्तरमें स्थापित होने पर भी ये लोग भगवत्विरोधी हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । पवित्र भास्कर स्वरूप प्रेमको सामान्य ब्रह्मज्ञानरूप खद्योत-किरणसे अधिक प्रकाशित करनेकी चेष्टा ही कुकर्म है । यह कुकर्म अपरिणामदर्शी ज्ञानवादियों द्वारा ही सम्पन्न हुआ है । उनके सम्प्रदायके लोगोंका अनुग्रह कम होनेसे ही साधारण व्यक्ति भक्तिकी विशुद्धता अधिक उपलब्धि करेंगे । ज्ञानको बढ़ाकर भक्त होनेकी चेष्टा करनेपर ऐसा कलंक अवश्य ही भोग करना होगा ।

काकतालीय न्यायानुसार जिस प्रकार काककी ही कार्यकारिता आरोपित की जाती है, उसी प्रकार ज्ञानवादीका हेतु-निर्णय-प्रस्ताव भी है । भक्तिके साथ ज्ञानका मिश्रण करनेसे निर्मल भक्ति समल हुई, दोष-निवारण का उपाय हुआ—'ज्ञान अधिक परिमाणमें भक्तिमें मिलानेपर उसमें यह दोष नहीं रहेगा !' एसिड़से कोई अंग जलकर विकृत हो गया । उसकी चिकित्साकी व्यवस्था यही हुई कि सारे अंगोंको एसिड़से पहले ही विकृत कर देनेसे यह दोष नहीं होता ! ज्ञानवादिन् ! तुम जो दुर्गति देख रहे हो, वह ज्ञान-कंकड़ रहित निर्मल भक्तिके कारण नहीं, बल्कि भक्तिके अभावसे ही हुई है । भगवान्‌में भक्ति रहनेपर या भक्तिकी प्रयोजनीयता उपलब्धि होने पर भक्त नामधारी अभक्तोंमें पड़कर तुम्हारी कदापि ऐसी विकृति नहीं होती । भक्तिके अभाव सृष्टि करनेका प्रधान द्रव्य ही अज्ञान है, जिसे तुम लोग 'ज्ञान' कहते हो । उपयोगिता होनेसे ही ज्ञान-प्राप्तिके साथ-साथ तुम्हारा अज्ञान भी हट जायगा । जब तक यह ज्ञानानुशीलन कर रहे हो, वहीं अज्ञान है। क्योंकि विशुद्ध ज्ञान या भक्ति प्राप्त होनेपर तुमने जो उपाय अवलम्बन किया, उसे 'ज्ञान'

नहीं कह सकते। ज्ञानानुशीलन नहीं छोड़नेसे भक्ति या प्रेमकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। 'ज्ञान' कहकर जिस भक्ति-विनाशक वस्तुके साथ भक्तिके सम्मेलनका आयोजन कर रहे हो, उसकी सहायता ग्रहण करनेसे उपधर्म या अभक्ति-धर्म उत्पन्न होगा। किसने कुकर्म किया, यह तुम्हारे यन्त्रसे ही जान लेना।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(नाममें रुचि और वैष्णव-सेवा)

१—भक्ति-सुकृतिके अभावमें क्या नाममें रुचि होती है ?

"जिस व्यक्तिकी भक्ति-सुकृति नहीं है, कदापि उसकी भक्ति-तत्त्वमें श्रद्धा नहीं होती। नाम ही सभी भक्तिके अंगोंमें श्रेष्ठ है, अतएव सुकृतिके अभावमें नाममें रुचि नहीं होती।"

—'नाममें अर्थवाद', ह० चि०

२—हरिनाममें रुचि होनेपर क्या नित्य-नैमित्तिकादि कर्मोंकी कोई आवश्यकता रहती है ?

"जब साधुसंग-संस्कार द्वारा चिदनुशीलनरूप हरिनाममें रुचि होती है, तब कर्माकारमें सन्ध्या-वन्दनादि कृत्य और नहीं रहते। हरिनाम सम्पूर्ण चिदनुशीलन है। सन्ध्या-वन्दनादि केवल उक्त प्रधान कार्यके उपाय मात्र हैं—ये कदापि सम्पूर्ण-तत्त्व नहीं हो सकते।"

—जै० ध० ३य अ०

३—असाधुको साधुभ्रमसे सेवा करनेसे क्या साधुसेवाका फल प्राप्त होता है ?

"ऐसा नहीं सोचेंगे कि हम लोग साधु होनेके कारण असाधु की सेवा करनेसे भी साधुसेवाका फल पायेंगे।"

—"वैष्णवनिन्दा' स० तो० ५।५

४ जीव-सेवा और वैष्णव-सेवा क्या एक ही हैं ?

"जीवमात्रको यदि वैष्णव कहा जाय, तो उनकी सेवा करनेपर 'जीव-सेवा' हो सकती है। उसे श्रीमहाप्रभुजीकी निर्दिष्ट 'नामपरायण वैष्णवसेवा' कहा नहीं जा सकता।"

—'वैष्णव-सेवा', स० तो० ६।१

५—उदरपरायण और धन-शिष्यादि-लोभी वैष्णव-चिन्हधारी लोगोंको भोजन करानेसे क्या वैष्णवसेवा होती है ?

"तीर्थ-स्थानमें वर्त्तमान प्रथा नितान्त अनिष्टकर है । वहाँ एक छड़ीदारने आकर एक सौ वैष्णवोंको निमन्त्रण किया । निमंत्रण पाकर तथाकथित वैष्णवोंने अन्यान्य कार्योंको छोड़कर तिलकादि वैष्णवोचित चिन्होंको धारण किया । 'आज भरपेट पूड़ी-पकवान और मालपुआ खायेंगे और साथ ही साथ कुछ दक्षिणा भी मिलेगी'—इस बड़ी आशासे भक्ति प्रकाशित करने लगे। श्रीरूप गोस्वामी-पादने श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें 'धन-शिष्यादिभिर्द्वारैर्या भक्तिरुत्पद्यते' इत्यादि वाक्यद्वारा इन सभी कार्योंको भक्तिके रूपमें स्वीकार नहीं किया है । ये सभी कार्य यदि भक्ति नहीं हुए, तो अनुष्ठाता लोगोंको वैष्णव कहकर स्वीकार नहीं किया जा सकता ।"

—'वैष्णव-सेवा', स० तो० ६।१

६—बहिर्मुख प्रभु-सन्तानको भोजन करानेपर क्या वैष्णव-सेवा होती है? वैष्णव सेवामें क्या आश्रम-सम्मानकी आवश्यकता है ?

"आजकल तीर्थस्थानमें यही प्रथा है कि जब जिन्हें वैष्णवसेवा करनेकी इच्छा होती है, तब वे कोई एक प्रभु-सन्तानको बुलाकर उनके पुजारी-सेवकद्वारा अन्न-व्यंजन, मिठाई-पकवान आदि तैयार कराकर 'वैष्णव' नामधारी कुछ व्यक्तियोंका आमन्त्रण कर उन्हें भोजन कराते हैं । ऐसे कार्यको हम लोग वैष्णवसेवा नहीं कह सकते । वैष्णव-सेवामें आश्रमकी आवश्यकता नहीं है । भक्ति-तारतम्यसे ही वैष्णवोंका भी तारतम्य-विचार होता है ।"

—'वैष्णव-सेवा' स० तो० ६।१

७—किस प्रकारके विचार और सतर्कता के साथ वैष्णव-सेवा करना चाहिये ?

"वैष्णव-सेवाको नित्य-धर्मके अन्तर्गत जानना चाहिये । किन्तु प्रतिष्ठाकी आशासे निमंत्रित वैष्णवोंकी सेवा कर दक्षिणादि प्रदान करते हुए भक्ति-विरुद्ध कार्य नहीं करेंगे ।"

—'वैष्णव-सेवा', स० तो० ६।१

८—वैष्णव-भोजनमें दक्षिणा-प्रदान कार्य क्या कर्मकाण्ड नहीं है ?

"वैष्णवोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा देना नितान्त कर्मकाण्डमें परिगणित है । वैष्णवोंकी दक्षिणा नहीं है। वैष्णवोंकी दक्षिणा-प्रथा एवं ब्राह्मणोंकी दक्षिणा-प्रथा परित्याग करना नितान्त आवश्यक है ।"

—'वैष्णव-सेवा' स० तो० ६।१

९—किस प्रकार वैष्णवोंको संतुष्ट करना चाहिए ?

"हे भक्तवृन्द ! शुद्ध नाम-परायण वैष्णवों की सर्व-प्रकारसे सेवा करें । किन्तु वैष्णवोंको भोजन-दक्षिणा देकर वैष्णव-सेवाको कर्मकाण्ड से भी अधम नहीं करेंगे । निमंत्रण देकर अनेक वैरागी वैष्णवोंको भोजन कराना श्रीमहाप्रभुजीका मत नहीं है ।"

'वैष्णव-सेवा' स० तो० ६।१

१०—शुद्ध वैष्णव और साधारण अतिथि को किस प्रकार भोजन कराना उचित है ?

"भूखे एवं आतुर विद्यार्थियोंको आवश्यक भोजन कराना हो, तो उस कार्यको अतिथि-व्यवहारके रूपमें सम्पन्न करना चाहिये। प्रीतिविशेष करनेका प्रयोजन नहीं है। यत्न करो, किन्तु प्रीति मत करो। शुद्ध वैष्णवोंको प्रीतिके साथ भोजन कराकर एवं आवश्यकता पड़ने पर प्रीतिके साथ उनका प्रदत्त प्रसाद-भोजन ग्रहण करना चाहिये।"

'संगत्याग' स० तो० ११।११

११—संन्यासीको भिक्षा देना एवं अभ्यागत वैष्णवोंकी सेवा करना क्या एक ही कार्य है?

"अनिमंत्रित वैरागी वैष्णवका नाम 'अभ्यागत' है। घटनाक्रमसे ऐसे दो एक वैष्णव गृहमें आनेपर उनकी सेवा करना उचित है। इसीके द्वारा गृहस्थकी वैष्णव-सेवा होती है। अधिक त्यागियोंको एकत्र करनेसे उनका उपयुक्त सम्मान न होकर, अपराध हो पड़ता है। निमंत्रण करनेमात्रसे निमंत्रित वैष्णवका अभ्यागतत्त्व धर्म नहीं रहता। उससे संन्यासीको भिक्षा देना होता है, किन्तु वैष्णव-सेवा नहीं होती।"

—'वैष्णव-सेवा' स० तो० ६।१

१२—अतिथि-सेवा और वैष्णव-सेवामें क्या पार्थक्य है? वैष्णव गृहस्थके लिये कौन-सा कर्त्तव्य है?

"अतिथि-सेवा एवं वैष्णव-सेवामें यही भेद है कि अतिथि-सेवा गृहस्थ-धर्म है एवं वैष्णव-सेवा वैष्णव-धर्म है। जो वैष्णव होकर भी गृहस्थ हैं, वे अवश्य ही अतिथि-सेवा करेंगे। क्योंकि वे गृहस्थ हैं, इसलिये अतिथि-सेवा करेंगे एवं वैष्णव होनेके कारण वैष्णव-सेवा करेंगे।"

—'वैष्णव-गृहस्थका आतिथ्य' स० तो० ८।२

१३—यथार्थ वैष्णव-सेवा किस तरह होती है?

"आजकल 'महोत्सव' की एक प्रथा चल रही है। उसे बहुतसे व्यक्ति वैष्णव-सेवा समझते हैं। वस्तुतः शुद्ध वैष्णवसेवाके बिना वैष्णव-सेवा नहीं होती। शुद्ध वैष्णव यदि थोड़े भी हों, तथापि उनकी सेवासे ही वैष्णव-सेवा हो सकती है।"

'वैष्णव-सेवा एवं प्रचलित महोत्सव प्रथा', स० तो० ४।५

१४—वैष्णवोंके आगमनमें एवं गमनमें किस तरह भक्त्यङ्ग पालन करना चाहिए?

"वैष्णव आ रहे हैं, यह सुनकर कुछ दूर जाकर उनकी अभ्यर्थना करनी चाहिये। जब वैष्णव लोग चले जाय, तब उनके साथ कुछ दूरतक अनुगमन करना चाहिए।"

—'श्रीरामानुजस्वामीका उपदेश' स० तो०७।३

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

कुछ प्रश्न और उनके उत्तर

प्रश्न १—गीतामें ऐसा लिखा है कि जन्म लेनेवालेकी मृत्यु और मरनेवाले का जन्म निश्चित है। फिर जो यह कहा जाता है कि हरिभजनसे भवव्याधि (गमनागमन) समाप्त हो जाती है—कहाँ तक सत्य है? दोनोंमें से कोई एक विचार अवश्य अधूरा है।

उत्तर—वेद और सर्व उपनिषदादि शास्त्रोंका सार तथा विशेषतः भगवद्मुख-निःसृत वाणी होनेके कारण गीतामें परस्पर विरोधी विचार आदि किसी भी दोषकी संभावना नहीं है। इसमें अन्वय और व्यतिरेक अर्थात् विधि और निषेधके द्वारा एक ही मूल विषयका प्रतिपादन किया गया है। इसलिये ये दोनों ही बातें एक ही मौलिक सिद्धान्तके दो पहलु मात्र हैं। इनमें कहीं भी विरोध नहीं है।

युद्धके भावी परिणामकी चिन्ता कर अर्जुन शोकसे विह्वल होकर किंकर्त्तव्य-विमूढ़की तरह हो गये। कोई दूसरा पथ न देखकर उन्होंने भगवान् कृष्णके शरणागत होकर कर्तव्यके विषयमें उचित उपदेशके लिये प्रार्थना की।

भगवान् कृष्णने सर्वप्रथम अर्जुनको जीवात्मा और परमात्माके नित्यत्व तथा पांचभौतिक शरीरोंके अनित्यत्वको दिखला कर यह समझानेकी चेष्टा की कि भौतिक शरीरोंके जन्म और मृत्यु होने पर भी जीवात्माओंका जन्म-मरण नहीं है। जीव भगवान्के अणुचिद् अंश हैं तथा वे भी भगवान्की भाँति अजन्मा और सनातन हैं—यह सर्वशास्त्र-सम्मत सिद्धान्त है। इसलिये शरीरोंके विनाशके लिए शोक करना अनुचित है।

उक्त शास्त्र सिद्धान्तके विपरीत तार्किकों के अनुसार यदि सदा जन्मने और मरने वाले शरीरको ही तू आत्मा माने अथवा आत्माको शरीरसे भिन्न अज और अविनाशी आदि न माने, तो भी अवश्यंभावी परिवर्तनशील शरीरके विनाशके लिये भी तुम्हारा शोक करना सर्वथा अनुचित है—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥
गीता २।२७

अर्थात् जन्मे हुए की मृत्यु निश्चित है तथा मरे हुऐ का जन्म भी निश्चित है—यदि ऐसा भी मानो, तो भी अवश्यंभावी मृत्युके लिये शोक करना उचित नहीं है। अतः किसी भी दृष्टिसे शोक करना उचित नहीं।

उक्त श्लोकके द्वारा भगवान्ने शास्त्र-ज्ञानरहित शुष्क तार्किकोंकी दृष्टिसे भी शोक न करने का उपदेश मात्र दिया है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि शरीर ही आत्मा है अथा जन्म-मरणके चक्करमें फँसे हुए का कभी उससे मुक्ति हो ही नहीं सकती।

यथार्थ सिद्धान्त यह है कि 'ममैवांशो जीवलोके'—गीता १५।७ श्लोकके अनुसार जीव भगवान्‌के अणुचिद् अंश हैं। जीव अजन्मा और अविनाशी होने पर भी भगवद् विमुख होने पर भगवन्माया द्वारा स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंद्वारा आवृत्त होकर त्रिविध तापोंसे तब तक दग्ध किये जाते हैं, जब तक कि वे पुनः स्वरूपमें स्थित होकर भगवान्‌को प्राप्त नहीं हो जाते। मायाबद्ध जीवोंका मायिक शरीर धारण और त्याग ही जन्म-मृत्यु कहलाता है। भगवत्-प्राप्ति होने पर जन्म-मरण प्रवाह समाप्त हो जाता है।

भगवत् विमुख जीवोंको जन्म-मरणके चक्कर में पड़ना पड़ता है, गीतामें इसका प्रतिपादन किया गया है—

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥

(गीता० ९।३)

परन्तप अर्जुन ! इस धर्ममें श्रद्धाहीन पुरुष मुझको प्राप्त नहीं होते और मृत्युरूप संसारचक्रमें घूमते रहते हैं। और भी—

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥

(गीता० ८।१६)

अर्जुन ! ब्रह्मलोक तकके सभी लोकों (१४ लोकों) या लोकवासियोंका पुनर्जन्म होता है; परन्तु मुझे पा लेनेके पश्चात् और जन्म नहीं होता।

इनके अतिरिक्त—

(क) जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

(गीता० ४।९)

(ख) मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

(गीता० ७।१४)

(ग) ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥

(गीता० ८।१३)

(घ) मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥

(गीता० ८।१५)

आदि श्लोकोंमें भगवत्प्राप्तिसे जन्म-मरणसे मुक्ति हो जाती है, ऐसा प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार भगवान्‌के गीतोपदेशमें परस्पर-विरोधी विचार नहीं हैं। जीव जब तक भगवानसे विमुख होकर विषयोंमें आसक्त रहते हैं, तबतक उनका जन्म-मरण होता रहेगा—यह साधारण सिद्धान्त है। परन्तु ज्ञात-अज्ञात सुकृतिपुंजके फलस्वरूप सौभाग्यवान जीव साधु-संग और उससे क्रमशः भगवद्भक्ति और अन्तमें भगवानको प्राप्त होकर जन्म-मरणके चक्करसे सदाके लिये छुटकारा प्राप्त कर लेता है यही विशेष विधि है।

प्रश्न २—क्या चेतन पदार्थोंमें भी काम भाव रहता है ? मेरे विचारसे काम जड़ेन्द्रिय-विषय है। वेणु-गीतमें व्रजगोपियोंमें वेणु-गीत सुनकर कामोद्दीपन हुआ—ऐसा क्यों ?

उत्तर—जड़ जगत—चिद् जगतकी छाया है। काया और छायामें कुछ सादृश्य रहनेपर भी छायामें विकृत और विपरीत बातें अधिक देखी जाती हैं। प्रेम काया है,काम छाया है। प्रेम चिन्मय व्यापार है, काम जड़ीय विकार है। अप्राकृत प्रेमकी छाया ही प्राकृत जगतमें विकृतरूपमें 'काम' कहलाती है। अतः प्रेम और जड़ीय काम एक नहीं है।

विशेषतः व्रजगोपियाँ सम्पूर्ण चिन्मयी और नित्य-सिद्धाओंसे भी श्रेष्ठ भगवानकी ह्लादिनी शक्तिकी प्रकाशरूपा हैं। वे सर्वलक्ष्मी-मयी हैं। इन व्रज-गोपियोंमें नित्यसिद्ध कृष्ण-प्रेम है। उनके उस विशुद्ध-प्रेमको अप्राकृत वर्णनमें 'काम' भी कहा गया है। सनकादि, शुकदेवजी और उद्धव जैसे मुक्तजन भी उस प्रेम या कामकी आकांक्षा रखते हैं—

प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्।
इत्युद्धवादयोऽप्येतं वाञ्छन्ति भगवत्प्रियाः॥

(गौतमीत तंत्र)

गोपियोंमें प्राकृत हेय कामका गंध मात्र भी संभव नहीं है। अतएव प्रश्न सम्बन्धी श्लोकमें 'स्मर' या 'काम'—शब्दका अर्थ उक्त गौतमीय तन्त्रके अनुसार श्रीमद्भागवतके सभी टीका-कारोंने 'प्रेम' लिखा है। मूल श्लोक इस प्रकार है—

तद् व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम्।
काश्चित् परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन्॥

(भा० १०।२१।३)

यहाँ स्मरोदयम्' = कामोदयम्= प्रेमोदयम् अर्थात् प्रेमका उदय होना है।

इसके अतिरिक्त एक दूसरा भी अर्थ है—स्मरोदयम्=स्मरण हो आना। अर्थात् श्री-कृष्णकी बंशीध्वनिके श्रवणसे गोपियोंको कृष्णके नाम, रूप, गुण और लीलाओंका स्मरण हो आया और उस स्मरणसे वे सम्पूर्ण रूपसे आविष्ट हो पड़ीं। वे परस्पर आविष्ट चित्तसे स्मरण हुए उन लीलाओं आदिका वर्णन करने लगीं। अतएव इस श्लोकमें प्राकृत इन्द्रिय सम्बन्धी दूषित 'काम' का गन्ध भी नहीं है। शुद्ध चेतन वस्तुमें प्राकृत काम भाव नहीं होता। वहाँ केवल विशुद्ध प्रेम होता है। भगवत् विमुख बद्धजीव शुद्ध प्रेम या अप्राकृत कामकी धारणा ही नहीं कर सकता। वह शुद्ध प्रेमको भी प्राकृत काम ही मानता है। यह उसका दुर्भाग्य ही है। जैसे शुद्ध-स्वर्णको न पहचानने वाला व्यक्ति रोल्ड-गोल्ड या गिल्टीको ही सोना समझकर वंचित होता है, उसी प्रकार शुद्ध प्रेमको न पहचाननेवाला दुर्भागा जीव जड़ीय काम और विशुद्ध प्रेम या अप्राकृत कामको एक मानकर वंचित हो पड़ता है।

प्रश्न ३—भाग्यवादका उदय केवल गरीबों तथा धर्मपथ पर चलनेवालोंके लिये ही हुआ है। संसारमें ऐसा देखा जाता है कि अधिकतर लोग गरीब एवं दुःखी हैं। कुछ करोड़पति भी दुःखी हो सकते हैं। भाग्यवादका सिद्धान्त गरीबोंके संतुष्टीकरणका साधन है या यों कहा जाय कि पुनर्जन्मवादका विकल्प है।

उत्तर- भाग्यका अर्थ प्रारब्ध या पूर्वकृत कर्मोंका फल है। अतः भाग्य या प्रारब्धका सिद्धान्त एक दकियानुसी विचार या केवल गरीबोंके संतुष्टीकरणका साधन है—ऐसा

कहना अनुचित है । बल्कि यह प्राणीमात्रके लिये एक अपरिहार्य सर्वव्यापक नियम है ।

जो जैसा करता है, वैसा ही फल भोगता है । साधारणतः प्रत्येक कर्मका फल होता है । उनमेंसे कुछ कर्मोंका फल साथ-साथ ही मिलता है, जैसे विषपान आदि । कुछ कर्मोंका फल कुछ बिलम्बसे होता है, जैसे बीज बोनेसे फल आदि । उसी प्रकार कुछ कर्मोंके फल कुछ और अधिक बिलम्बसे अर्थात् जन्मान्तरों मिलता है, जैसे जन्मसे अन्धा, लंगड़ा, कुष्ठ आदि होना । कुछ ऐसे भी कर्म होते हैं जिनका कुछ फल नहीं होता या कम होता है । जैसे बीज बोये जाने पर भी पानीकी कमी या अधिकतासे, मिट्टीकी या अन्य प्राकृतिक प्रकोपसे फल कम हो जाता है या नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार प्रायश्चित्त आदि अनुष्ठानों से कर्मफल हल्का हो जाता है अथवा हरिभजन से कर्मफल सम्पूर्ण नष्ट भी हो जाता है । कर्मकी गति अति गहन है ।

प्रारब्धका सिद्धान्त सबपर एक समान लागू होता है । अन्धे, लंगड़े और अपंग बच्चे गरीब-धनी, सभी श्रेणियोंमें जन्मसे ही पैदा होते हैं । बड़े-बड़े युद्धोंकी बातको तो छोड़िये, वर्तमान बंगलादेशके युद्धमें क्या धनी परिवार विनाश और दुर्दशासे बच गये हैं ? नहीं, आज भारतकी पूर्वी सीमापर शरणार्थी कैम्पोंमें गरीब और धनी परिवारोंको एक समान दुर्दशा भोग करते हुए देखा जा सकता है, दोनों प्रकारके परिवारजनोंकी हत्याएँ और देश विनाश हुआ है । हिरण्यकशिपु, रावण, शिशुपालकी तो बात ही छोड़िये, आधुनिक ऐतिहासिक युगमें भी नेपोलियन, हिटलर और मुशोलिनी आदि व्यक्ति, जिन्होंने भाग्यके सिद्धान्तको मूर्खोंका ढकोसला बताया था, उनका क्या हुआ ? उन्हें भी बाध्य होकर कर्मफल भोगना ही पड़ा ।

आजकल सरकारकी कृपा ?। से लाटरी-प्रथा चल पड़ी है । क्या ये लाटरियाँ केवल धनीवर्गके ही लोग पा रहे हैं ? क्या केवल गरीब लोग ही मरते हैं, धनी नहीं मरते ?

संसारमें अधिक संख्यक लोग गरीब और दुःखी हैं, यह ठीक है । इसका कारण भी स्पष्ट है कि आज संसारमें अधिकतर लोग पाप करते हैं, असत्य बोलते हैं, व्यभिचार करते हैं, प्राणी हिंसा करते हैं और वेद-विरुद्ध असत् कर्म करते हैं—इस प्रत्यक्ष सत्यको कौन अस्वीकार करेगा ? अतः अधिक संख्यक लोग उसका कुफल भोगनेके लिए बाध्य हैं ।

कुछ लोगोंके मतानुसार कुछ करोड़पति दुःखी हो सकते हैं, परन्तु निजी कारणोंसे ही वे दुःखी हैं । वह निजी कारण उनकेद्वारा किये हुए वर्तमान या पूर्व कर्मोंके फलके अतिरिक्त और कुछ नहीं है । अतः प्राणियोंका परस्पर मिलन, बिछुड़न, सुख-दुःख आदि सब कुछ कर्मोंका फल ही है—

कर्म प्रधान बिस्व रचि राखा ।
जो जस करिय सो तस फल चाखा ॥

बिना कर्म किये हम क्षणभर भी नहीं रह सकते । इसलिए गीतामें कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोगकी क्रमशः शिक्षा दी गयी है । प्रारब्ध अर्थात् कर्मफलको देखकर हमें शुभ-कर्म करनेकी प्रेरणा लेनी चाहिये । जो लोग भाग्यके नाम पर रोते हैं और आलस्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं, वे कर्म, कर्मफल, भाग्य या प्रारब्धका रहस्य नहीं जानते । प्रारब्धका सिद्धान्त जीवनको उत्साहमय, सरस

और सजीव बनानेकी प्रेरणा देता है---शास्त्र-विदित सुकर्म करनेकी प्रेरणा देता है।

आत्महत्या, व्यभिचार, प्राणीहिंसा, चोरी आदि कर्मफल नहीं हैं, जिनको करनेके लिए जीव बाध्य हो। बल्कि ये सब कर्म हैं। मनुष्य इन कर्मोंको स्वयं करता है या नहीं भी कर सकता है। मनुष्य किसी भी परिस्थितिमें स्वयं इच्छानुसार कर्म करनेको स्वतन्त्र है। परन्तु फल भोगने के लिए परतन्त्र है। अत्यधिक गरीब लोगोंमें भी आदर्श, सत्यवादी, धार्मिक, निर्लोभी, अहिंसक व्यक्ति देखे जा सकते हैं। उसी प्रकार धनी वर्गमें भी व्यभिचारी, झूठे, कपटी, स्वार्थी, प्राणी-हिंसक देखे जा सकते हैं। श्रीलालबहादुर शास्त्री, अब्राहिम लिंकन (अमेरिकाके भूतपूर्व विख्यात् राष्ट्रपति) आदि अपने अध्यवसाय और कर्मफलसे गरीब परिवारमें जन्म लेकर भी सांसारिक दृष्टिसे महान व्यक्ति बन गये हैं।

कर्मफल भोगना अनिवार्य होने पर भी अजामिल और वाल्मीकि आदिकी भगवन्नाम-के उच्चारणसे कर्मफलसे मुक्ति और भगवत्प्राप्ति सुनी जाती है। अतः भगवद्भक्ति ही मनुष्य-मात्रके लिये ही नहीं, जीवमात्रके लिए श्रेयस्कर है। —संपादक

विरह-संवाद

गत २२ जून १९७१, सं० २०२८, आषाढ़-वदी अमावस्या, मंगलवारको श्रीसारस्वत गौड़ीय सम्प्रदायके तीर्थ-पुरोहित, 'बड़े चौबेजी' नामसे सुख्यात, माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मणश्रेष्ठ श्रीव्रजमंडलके माने हुए विद्वान् श्रीगोपालचन्द्र चतुर्वेदी प्रायः ८० वर्षकी वृद्धावस्थामें मथुरा स्थित अपने वासस्थानमें श्रीकृष्णस्मरण करते-करते श्रीव्रजरजको प्राप्त हुए। इनका जन्म वि० सम्वत् १९४८, श्रावण पूर्णिमामें हुआ था। इनके पिता संभ्रान्त ब्राह्मण परिवारके विशिष्ट व्यक्ति थे। उनका नाम श्री वृन्दावन-चन्द्रजी था। माननीय चौबेजी बड़े ही नम्रस्वभावापन्न, अभिमानशून्य, वैष्णवतासे परिपूर्ण, सरल, स्निग्ध एवं मधुर स्वभावके थे। इनका पाण्डित्य भी अपार एवं वैष्णवोचित था। ये बड़े ही कर्मठ एवं व्रज-साहित्य-प्रेमी थे। ये साहित्य, व्याकरण, काव्य एवं पुष्टि-मार्ग श्रीवल्लभ-सम्प्रदायके माने हुए विद्वान् थे। ये चारों वैष्णव सम्प्रदायों एवं ५२ राजाओंके तीर्थ-पुरोहित भी थे। इन्होंने असंख्य श्लोक, स्तुति आदिकी रचना की है। ये गत २५ वर्षोंसे मथुराके स्थानीय श्रीमाथुर चतुर्वेदी संस्कृत महाविद्यालयके संचालक एवं ट्रस्टी थे। ये वृन्दावनके तटीय स्थानके भी ट्रस्टी रह चुके थे। चौबेजीकी उदारता, धर्मप्राणता, मृदुभाषिता अभूतपूर्व थीं। आप सभीके आदर-पात्र थे। इनके परलोकगमनसे श्रीव्रज-मण्डलने अपने एक विशिष्ट रसिक एवं बन्धुको खो दिया है जिनका अभाव पूरण करना असंभव है। फिर भी हमें इस बातपर अपार हर्ष है कि उनके सुयोग्य सुपुत्र श्रीवंशीधर चतुर्वेदी एवं श्रीजमुनाप्रसाद चतुर्वेदी बड़ी ही कुशलता एवं उत्तरदायित्वके साथ अपने योग्यतम पिता द्वारा प्रदर्शित सुमार्गपर अनुगमन कर रहे हैं। उक्त दोनों सज्जनोंने हमारे समितिकी सब ओरसे काफी सहायता की है और कर रहे हैं। श्रीवेदान्त समितिके सदस्यवर्ग इनके निकट चिरऋणी हैं।

—निजस्व संवाददाता

प्रचार-प्रसंग

दक्षिण-बिहार एवं पूर्व-बिहारमें प्रचार

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज पार्टीके साथ पटनानगरमें पहुंचनेपर स्थानीय खास-महलके श्रीगौड़ीय आश्रयमें वासस्थानका प्रबन्ध हुआ। वहाँ स्थानीय परशुड़ी मोहल्लेमें उन्होंने श्रीयुत सुधीरचन्द्र सामन्त महोदयके वासस्थानमें १२।६।७१ को श्रीमद्भागवत-पाठ एवं श्रीहरिसंकीर्त्तनकारा श्रीहरिकथाका परिवेशन किया। उसके पश्चात् १३।६।७१ से २४।६।७१ तक क्रमशः खासमहलके श्रीयुत प्रफुल्लकुमार सेन, श्रीदेवीदास बनार्जि, श्रीबन्कुबिहारी दासाधिकारी, हल्दवनीके श्री अमूल्यचरण घोष, प्रमथनगरके श्रीनगेन्द्रनाथ सेन, परशुडीके श्री भूपेशचन्द्र कुण्डु, श्रीपाद मधुसूदन दासाधिकारीके वासभवनमें पाठ-कीर्त्तन एवं छायाचित्र द्वारा विपुल रूपसे श्रीश्रीगौर-वाणीका प्रचार कर सदलबलके साथ २६।६।७१ को बिहारकी राजधानी पटनामें पहुंचे। वहाँ २७।६।७१ से १४।७।७१ तक बाँकीपुर श्रीहरिसभामें एवं अशोक राजपथके श्रीराधाकृष्ण मन्दिरमें श्रीचैतन्य-चरितामृत, श्रीमद्भागवत-पाठ, छायाचित्र, श्रीहरिकीर्त्तनद्वारा श्रीगुरु-तत्त्व, वैष्णव-तत्त्व, भक्ति-तत्त्व, श्रीगौर-राधाकृष्ण तत्व एवं कलियुगमें एकमात्र श्रीहरि-नाम-भजनकी महिमा, सनातन धर्मका विचार, आदि विषयोंकी आलोचना की। श्रीस्वामी-जी महाराजके प्रचारसे श्रोता लोग वैष्णवधर्मके प्रति विशेष आकृष्ट हुए हैं एवं स्वयं परतत्व श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुद्वारा प्रचारित प्रेम-धर्मकी सर्वोत्कर्षता विशेष रूपसे उपलब्धि करनेमें समर्थ हुए हैं।

पटनासे प्रस्थान कर उत्तर प्रदेशके प्रसिद्ध एवं अन्यतम प्रधान शहर इलाहाबाद पहुंचे। वहाँ १७।७।७१ से २१।७।७१ तक स्थानीय मिडिल लाइनके श्रीगुरुदास दे महोदयके वास-स्थानमें हरिकीर्त्तन एवं भागवत-पाठ आदि कर २२।७।७१ को समितिके अन्यतम विशिष्ट केन्द्र श्रीमथुरा शहरके श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें पहुंचे हैं। आजकल उक्त मठमें ही हरि-कथाका कीर्त्तन-प्रवचन कर रहे हैं।

श्रीश्रीझूलनयात्रा-महोत्सव

पूर्व-पूर्व वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गते १६ श्रावण, २ अगस्त, सोमवार से २०श्रावण, ६ अगस्त, शुक्रवार श्रीबलदेव पूर्णिमा तक श्रीश्रीराधाविनोदबिहारीजीका झूलनमहोत्सव श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूलमठ—श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीप, शाखामठ—श्रीकेशवजी गौड़ीय

मठ, मथुरा एवं श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, गोलोकगंज, आसाममें विशेष समारोहपूर्वक मनाया गया है। अन्यान्य शाखा मठोंमें भी यह उत्सव विशेष उत्साहके साथ मनाया गया है। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें प्रतिदिन झूलनकी भव्य झाँकियाँ प्रस्तुत की गईं। सभामण्डप, हिंडोला एवं श्रीमन्दिरकी सजावट नाना प्रकारके रंगबिरंगे वस्त्र, आम्र-पल्लव, तोरण, कदली-वृक्ष एवं विद्युत्द्वारा की गई थी। प्रतिदिन तुमुल हरिसंकीर्तन एवं प्रवचनादि हुआ करते थे। श्रीझूलन-यात्रा उत्सव इसीलिए मनाया जाता है कि जिससे हम जैसे बद्धजीव भी श्रीराधाकृष्णकी अप्राकृत एवं चिन्मयी लीलाका सम्यक् प्रकारसे अनुशीलन कर उस लीलामें प्रवेशाधिकार प्राप्त कर सकें। उत्सवके आखिरी दिन श्रीबलदेव पूर्णिमाका उपवास एवं व्रत-उद्यापन किया गया। उक्त दिवस सबेरे एवं शामको स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के अभिन्न प्रकाश-विग्रह श्रीबलरामजीके तत्वपर एवं उनके लीला-वैशिष्ट्य पर विशद रूपसे आलोचना की गई। विशेष रूपसे कीर्त्तन, भागवत-पाठ, भाषण आदि कार्यक्रम सम्पन्न हुए।

श्रीश्रीजन्माष्टमी-व्रत एवं श्रीनन्दोत्सव

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत २८ श्रावण, १४ अगस्त, शनिवारको समिति के मूलमठ एवं सभी शाखा मठोंमें स्वयं भगवान् लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णका जन्माष्टमी-व्रत उपवास, भागवत-पाठ, प्रवचन, हरिसंकीर्त्तन एवं प्रदर्शनीके माध्यमसे पालित हुआ है। उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें सबेरे ५ बजेसे लेकर मध्यरात्र १२ बजे तक श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धका पारायण एवं बीच-बीचमें हरि-संकीर्त्तन हुआ। सबेरे मंगलारति, कीर्त्तन आदिके पश्चात् पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने भागवत-पाठ प्रारम्भ किया। उनके पश्चात् त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त उद्वमन्थी महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज, श्रीकुंजबिहारी ब्रह्मचारी, श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी, श्रीरासविहारी ब्रजवासी, श्रीरामेश्वरप्रसाद सक्सेना आदि वक्ताओंने क्रमशः भागवत-परायण किया। सभा मण्डपको विविध आलोक-मालाओं, तोरण, पताका, रंग-बिरंगे वस्त्र, कदली-वृक्ष, आम्र-पल्लव, विविध प्रकारकी पुष्प मालाओंद्वारा सजाया गया। सुन्दर प्रदर्शनी-झांकी प्रस्तुत की गई। शामको तुमुल-हरिसंकीर्त्तन के माध्यमसे संध्यारति एवं तुलसी-परिक्रमाके पश्चात् पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने छायाचित्रके माध्यमसे श्रीकृष्ण-लीलाका गूढ़-रहस्य, श्रीकृष्णकी स्वयं भगवत्ता, उनका सर्वांशित्व, अखिलरसामृतसिन्धुत्व, सर्वशक्तिमत्ता, सर्वचित्ताकर्षी अद्भुत एवं असमोर्द्ध्व लीला-माधुरी, उनके पार्षदोंकी सर्वश्रेष्ठता आदि विषयोंपर बड़ा ही

मार्मिक, हृदयग्राही, शास्त्र-सुयुक्ति परिपूर्ण एवं गवेषणामूलक भाषण प्रदान किया। इसके पश्चात् कुछ देर तक हरिसंकीर्तन हुआ। अन्तमें श्रीकृष्णजन्म-प्रसङ्ग एवं श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी मनानेके गूढ़-तात्पर्यपर आलोचना हुई। मध्यरात्रिमें आरतिके पश्चात् उपस्थित सभी गण्यमान्य सज्जनोंको महाप्रसाद वितरण किया गया। दूसरे दिन श्रीनन्दोत्सवके अवसरपर उपस्थित वैष्णवोंको एवं सज्जनोंको विविध प्रकारके सुस्वादु व्यंजनयुक्त महाप्रसादका सेवन कराया गया। उक्त दिन सायंकालको छायाचित्रके माध्यम से पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने श्रीगौरलीलापर प्रकाश डाला। दूसरे दिन शामको भी यही कार्यक्रम रहा। तीसरे दिन श्रीरामलीलाका प्रदर्शन किया गया।

श्रीश्रीराधाष्टमी-महोत्सव

पूर्व-पूर्व वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी समितिके मूलमठ एवं सभी शाखा मठोंमें १२ भाद्र, २९ अगस्त रविवारके दिन स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रकी अभिन्न पराशक्तिरूपा एवं ह्लादिनी शक्तिकी अधिष्ठात्रीरूपा स्वयं भगवती श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकाजीकी प्राकट्य-तिथि बड़े आदर एवं समारोहके साथ मनायी गई है। उक्त दिवस सवेरे मंगलारतिके पश्चात् श्रीगुरुवन्दना, श्रीगुर्वष्टक, श्रीगुरुपरम्परा, पंचतत्व आदि कीर्त्तनके पश्चात् श्रीमती राधिकाजीके श्रीचरणोंमें दैन्य-प्रार्थनामूलक कीर्त्तनों एवं पदावलिगीतिका कीर्त्तन किया गया। तत्पश्चात् पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने वेद, पुराण, उपनिषद्, भागवत एवं अन्यान्य-तन्त्रोंके आधारपर श्रीराधा-तत्वपर शास्त्र-सुयुक्तिपूर्ण एवं हृदयस्पर्शी प्रकाश डाला। उन्होंने इस बातपर जोर दिया कि जब तक अनर्थ-निवृत्ति नहीं होती एवं कृष्ण-नाममें शुद्ध रति नहीं होती, तब तक श्रीराधा-तत्व पर अनधिकार रूपसे आलोचना करनेसे या उनके नामको अवहेलनापूर्वक ग्रहण करनेसे कदापि मंगल नहीं होता। उससे अपराधकी संभावना अवश्यम्भावी है। श्रीमती राधिकाजी अत्यन्त गोपनीयसे गोपनीय तत्व हैं। सम्पूर्ण शास्त्रोंमें बड़े ही गुप्त रूपसे उनका नाम ग्रहण किया गया है। श्रीमतीजीकी कृपा प्राप्त करना बहुत ही दुष्कर कार्य है। जो व्यक्ति उनके निजजनोंके दासानुदासकी चरण-धूलि मस्तकमें धारण कर सकते हैं, वे ही इसके अधिकारी हैं।

आजकल अधिकांश लोगोंकी यह गलत धारणा बनी हुई है कि श्रीमती राधिका श्रीकृष्णकी स्वयं प्रिया नहीं हैं, वे रायाण गोपकी पत्नी हैं एवं उनके साथ श्रीकृष्णने अयथापूर्वक विहार किया। भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा ऐसा करना अनुचित है एवं वे श्रीकृष्णके साथ सेव्या नहीं हैं।

किन्तु बात ऐसी नहीं है। यह सम्पूर्ण विपरीत एवं अनर्थमूलक विचार है। श्रीमती राधिका नित्यकाल ही श्रीकृष्णकी परमप्रेष्ठतमा प्रिया हैं। रायाण गोपके साथ कदापि उनका मिलन ही नहीं हुआ। रायाण गोप भी श्रीकृष्णके छायारूप हैं। रसोत्कर्षके लिये योग-मायाके प्रभावसे ऐसी लोकवंचनाकारी लीला घटित हुई है। श्रीमती राधिका सर्वशक्ति-योंकी आधाररूपा हैं। वे भगवान् श्रीकृष्णकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण करती हैं, अतएव "राधिका" हैं। श्रीमती राधिकाको छोड़कर कदापि कृष्ण प्राप्ति नहीं हो सकती। वे नित्य काल ही श्रीकृष्णके साथ सेव्या हैं। श्रीमती राधिकाजीकी कृपासे ही कृष्ण-कृपा प्राप्त होती है। उनकी सेवा ही सभी रसिक वैष्णवोंकी परम लोभनीय एवं वरणीय वस्तु है। बिना श्रीमती राधिकाजीके श्रीकृष्ण अपनी माधुर्यमय लीला करने में सर्वथा असमर्थ हैं। श्रीमती राधिकाजीमें ऐसे गुण हैं जिससे जो कृष्ण अपनी अद्भुत माधुरीसे सर्व जगतके जीवोंको आकर्षण कर लेते हैं, उन्हें भी वे मोहित कर लेती हैं। अतएव किस तरह हमारी तुच्छ एवं नश्वर प्राकृत रसना उनकी महिमा-कीर्त्तन कर सकती है? हमारा जड़ीय मन किस तरह उनके तत्त्वको जान सकता है? जिनपर उन परमाराध्या श्रीमती राधिकाजीके निजजनोंकी अहैतुकी कृपा हो जाय, वे ही इसे यथार्थतः जानने में समर्थ हैं। श्रीमती राधिकाजी हमारी परम सेव्या एवं परम आदरणीय वस्तु हैं। उनका नाम-ग्रहण बड़े ही आदर एवं श्रद्धाके साथ परम एकान्त स्थानमें ग्रहण करना चाहिए।

उक्त दिवस शामको त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त उद्धवमन्थी महाराजने श्रीचैतन्यचरितामृतसे श्रीराधा-तत्त्वकी विस्तृत एवं मार्मिक व्याख्या की।

श्रीवामन-द्वादशी एवं श्रील जीव गोस्वामी प्रभुका आविर्भाव

गत १६ भाद्र, २ सितम्बर, बृहस्पतिवारको श्रीवामन द्वादशी एवं श्रीगौर-निजजन अप्राकृत कविकुल-चूड़ामणि श्रील जीव गोस्वामी प्रभुका आविर्भावोत्सव मनाया गया। उक्तदिवस शामको आयोजित विशेष धर्म-सभामें श्रीवामनदेवका आविर्भाव प्रसङ्ग एवं श्रील जीव गोस्वामीपादकी अतिमर्त्य-जीवनी, अलौकिक प्रतिभा, एकनिष्ठ गुरुभक्ति, जगत-विलक्षण गुणावली, सर्वदर्शित्व आदि विषयोंपर आलोचना की गई। श्रीश्यामगोपाल ब्रह्मचारी, श्रीसुबलसखा ब्रह्मचारी, श्रीमहामहेश्वर ब्रह्मचारी, श्रीकालाचाँद ब्रह्मचारी, श्रीभक्त्या-श्रिरेणु ब्रह्मचारी, श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त उद्धवमन्थी महाराज आदि वक्ताओंने क्रमशः भाषण प्रदान किया। अन्तमें पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज ने एक सारगर्भित एवं शास्त्र-सिद्धान्तपूर्ण भाषण दिया। सभाके अन्तमें महामंत्र कीर्त्तन हुआ।

जगद्गुरु श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका आविर्भावोत्सव

पूर्व-पूर्व वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत १७ भाद्र, ३ सितम्बर, शुक्रवारके दिन श्रीगौर-निजजन जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका आविर्भाव-महोत्सव समितिके मूलमठ एवं सभी शाखा मठोंमें बड़े ही समारोहपूर्वक सुसम्पन्न हुआ है। उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें सबेरे मंगलारतिके पश्चात् श्रीगुरु–वन्दना, गुरु परम्परा आदि कीर्त्तनके पश्चात् श्रील भक्तिविनोद ठाकुर रचित पदावलियोंका कीर्त्तन किया गया। तत्पश्चात् पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने इन महापुरुष-शिरोमणिके जीवन-चरित्र एवं शिक्षाओंपर प्रकाश डालते हुए अस्मदीय श्रीश्रीगुरुपादपद्मद्वारा इस प्रसङ्गमें प्रदत्त भाषणका पाठ किया। शामको संध्या-रतिके पश्चात् एवं महाजन-पदावली कीर्त्तनके पश्चात् एक धर्मसभा आयोजित हुई। उसमें क्रमशः श्रीश्यामगोपाल ब्रह्मचारी, श्रीकालाचाँद ब्रह्मचारी, श्रीसुबलसखा ब्रह्मचारी, श्री-भक्तांघ्रिरेणु ब्रह्मचारी, श्रीमहामहेश्वर ब्रह्मचारी, श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी, त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिवेदान्त उर्द्ध्वमन्थी महाराज आदि वक्ताओंने श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरके अलौकिक जीवन-चरित्र, अतिमर्त्य प्रतिभा, सर्वाङ्गीण शास्त्र-पारङ्गति, श्रीगौरमनोभिष्ट-पूरण कार्यमें एकनिष्ठता, भक्ति-प्रचार कार्यमें असामान्य दक्षता, अप्राकृत गुणावली, अभूतपूर्व शिक्षा एवं सिद्धान्त, नित्यसिद्ध वैष्णवता, बद्ध-जीवोंके प्रति अपार-करुणा आदि विषयोंपर भाषणके माध्यम से भावपूर्ण एवं श्रद्धा-परिप्लुत पुष्पांजलियाँ अर्पित कीं। दूसरे दिन श्रीगौरपार्षद नामा-चार्य श्रील हरिदास ठाकुरके अतिमर्त्य–जीवन, हरिनामके प्रति अलौकिक निष्ठा, असामान्य दैन्य आदि विषयोंपर आलोचना की गई।

—निजस्व संवाददाता

"धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः"

आजकल मनुष्य अपनेको उन्नत एवं परम बुद्धिमान समझता है। वह जड़-विज्ञानकी उन्नति एवं भौतिक सुख-भोग-सुविधादि प्राप्तिको ही जीवनका चरम-लक्ष्य एवं ध्येय समझता है। वह अपने जीवनका परम कर्तव्य–भगवान्की आराधनाको सर्वथा भूल गया है। वह अपने स्थूल इन्द्रियोंके सुखोंको ही सर्वस्व समझ रहा है। वह आत्मज्ञानसे वंचित होकर देहको ही 'मैं' समझकर दिनोंदिन सांसारिक तुच्छ एवं अनित्य विषयोंमें आसक्त होता जा रहा है। वह अपने अभावोंको पूरण करनेका जी–तोड़ प्रयास कर रहा है; किन्तु उसके अभाव कभी दूर नहीं होते; बल्कि उसकी विषय–तृष्णा, कमियाँ, अशान्ति आदि बढ़ती ही जा रही हैं। उसने धर्मको अपने जीवनके लिये अनावश्यक समझ-

कर उसे उठाकर एक तरफ रख दिया है। धर्म उसके लिये आडम्बर, ढकोसला एवं भारस्वरूप जान पड़ता है। पशु जिस प्रकार विवेकशून्य होकर खाने-पीने, निद्रा-विहार, मैथुनादि कार्यमें दिवा-रात्र व्यस्त रहते हैं, उसी प्रकार वर्तमान समयके मनुष्य भी उन्हीं कार्योंमें दिन-रात लगे हुए हैं। किसी-किसी अंशमें वह इस विषयमें पशुओंको भी मात कर चुका है। वह अपनेको जितना ही सभ्य, उन्नत, बुद्धिमान एवं समर्थवान् समझनेका दम्भ भरता है, उतना ही वह असभ्य, पतित, विवेकशून्य एवं अक्षम होता जा रहा है। अपने दुर्गुणोंको दूर करनेमें, अपना नित्य कल्याण विचार करनेमें, सरल व्यवहार अर्जन करनेमें असमर्थ होता जा रहा है। उसमें पशुओंसे भी ज्यादा हिंसा, द्वेष, क्रोध, लोभ, काम आदि पनप रहे हैं। उसके लिए किसी प्राणी की हत्या करना एवं उसे यातना-पीड़ा देना कोई साधारणसे भी साधारण कार्य बन गया है। उसके हृदयमें अब दया, ममता, क्षमाशीलता, सौजन्य, परदुःख-कातरता आदि गुण सर्वथा न रहे।

चाहे कोई व्यक्ति जितना भी शिक्षित, सम्पन्न, कार्यदक्ष एवं सांसारिक दृष्टिसे उन्नत क्यों न हो, धर्मरहित होनेपर वे सब गुण उसके वृथा भारस्वरूप मात्र हैं। पशु और उसमें कोई विशेष पार्थक्य नहीं रह जाता। वर्तमान युगका मनुष्य लौकिक दृष्टिसे एवं भौतिक दृष्टिसे उन्नति कर रहा है। किन्तु पारलौकिक दृष्टिसे एवं नैतिक दृष्टिसे गिरता जा रहा है। क्रमशः मनुष्य अब अपनी सच्चरित्रता, त्याग, वैराग्य, आदर्श आदिको खोता जा रहा है। उसमें चोरी, व्यभिचारिता, दूसरोंको धोखा देना, परद्रोहिता, पाषण्डता, नास्तिक्य आदि दुर्गुण अधिकसे अधिक मात्रामें देखे जा रहे हैं। आजकलकी स्थूल वैज्ञानिक उन्नति या भौतिक उन्नति मनुष्यको वास्तविक शान्ति प्रदान नहीं कर सकती और न उसका अभाव ही पूरण कर सकती है। बल्कि उसने मनुष्योंकी समस्याओंको अधिक बढ़ा दिया है, यथार्थ शान्तिका रास्ता अवरुद्ध कर दिया है।

आज इस पृथ्वीके धरातलका पर्यवेक्षण करनेपर यह कटु किन्तु परम सत्य स्पष्ट ही दृष्टिगोचर हो रहा है। पृथ्वीके सभी राष्ट्र परस्पर हिंसा-द्वेष, एक दूसरे को नीचे गिराने की भावना, दूसरेकी भूमिको हड़पनेकी चेष्टा, मनुष्यता एवं शान्तिके नामपर घोर अत्याचार, उत्पीड़न, नैतिक एवं अन्तराष्ट्रीय भावनाओंका निरादर आदिसे ओतप्रोत हैं। इस का प्रत्यक्ष उदाहरण पूर्व बंगालमें देखा जा रहा है। किस प्रकार नृशंसता एवं क्रूरतासे वहाँ बंगवासी जनताकी कत्ले आम, उन लोगोंपर पाशविक अत्याचार, उनकी स्त्रियोंका अपहरण एवं उनका शील-भंग, छोटे-छोटे बालकोंतक का जीवन-नाश, उनके घरबारका सर्वतोभावेन नाश, इस्लाम एकताके नाम पर भयंकर कुकृत्य एवं अधर्म आदि कार्य कर रहे हैं एवं किस प्रकार मौन साधकर एवं खुला समर्थन देकर अमेरिका, चीन, अरब राष्ट्र आदि इस घोरतम अन्याय अधार्मिक एवं कार्यमें ईंधन प्रदान कर रहे हैं, यह वर्तमान मनुष्यके धर्महीनता एवं पशुताका प्रत्यक्ष प्रमाण प्रदान कर रहा है। धर्मके नष्ट हो जाने पर सभी कुछ नष्ट होना अनिवार्य है। धर्मकी रक्षा करनेपर वह हमारी रक्षा करेगा—'धर्मो रक्षति रक्षितः'। धर्मकी भावनाही मनुष्यको देवत्व एवं अमरत्वकी ओर ले जा सकती है।

— जनैक लेखक